

सूर्यपूजा



भुवनेश्वर

हिंदी
A D D A

सूर्यपूजा

अँधेरी घूप गलियों में हवा लपटों की तरह ऊँचे सीले मकानों से टकराकर एकरस हिंसक आवाज करती हुई भर-भर जाती थी।

मोटा, भद्दा डॉक्टर और दुबला रोगी-सा विद्यार्थी विलास हाथ में हाथ डाले फिसलौने खड़चड़े पर खामोश चले जा रहे थे। कीचड़ से बचने के लिए वह बराबर मेढकों की तरह फुदक रहे थे...। एकबारगी विलास का पैर कीचड़ में छपक गया और वह उतावली से

चिल्ला पड़ा - "डॉक्टर तुम मुर्दा हो, बिल्कुल मरे हुए, इससे ज्यादा कुछ भी तो नहीं। तुम जानते हो, तुम मुर्दा हो? ...मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ, लेकिन मेरे चाहने से क्या होता है, तुम तो मरे हुए हो।"

"अच्छा, अच्छा," - डॉक्टर ने अपने हाथ का पूरा सहारा देते हुए बे-मन कहा।

"मैं तुमसे इतनी साफगोई इसलिए कर रहा हूँ कि मैं तुम्हें चाहता हूँ। क्या तुम जानते हो, मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ?"

"हाँ, हाँ... क्यों नहीं जानता।"

"यह तो नरक है डॉक्टर, नरक! यह मुर्दों की बस्ती है। यह भरा-पूरा शहर मुर्दों की बस्ती है... बाज मरतबा तो मैं सोचने लगता हूँ कि यह बिल्कुल खाली है... यह शहर है ही नहीं, यह कोई प्रेत है। डॉक्टर, क्या यह मुमकिन है कि इस मनहूस शहर में हजारों-हजारों आदमी सिर्फ खाने, पीने और सोने के लिए ही जिन्दा हैं। अँधेरा, कीचड़, आँधी, बारिश, चारों तरफ देखो, कहीं जीवन का हल्का-सा भी इशारा है? नहीं! घूमकर देखो। कोई यह यकीन करेगा कि यह एक शहर है जहाँ आदमी रहते हैं - जिन्दा, पूरे-पूरे मनुष्य, जो ह्यूमेनिटी कही जाती है? ...वह क्यों जिन्दा हैं? माताएँ प्रसव की मुसीबत आखिर क्यों झेलती हैं? ...कल्पना करो कि यह बस्ती गारत हो गयी, इसका नाम-निशान मिट गया। गोबर के चोंथ की तरह बारिश ने घुलाकर बहा दिया। लेकिन दुनिया में कोई फर्क न पड़ा। कोई जानेगा भी नहीं कि घूरे पर गोबर का एक चोंथ नहीं रहा। और कोई जाने भी क्यों... थोड़े-से क्लर्क, दुकानदार, दलाल, अफसर - और हर एक शहर में बिल्कुल ऐसे ही क्लर्क, दुकानदार, दलाल और अफसर हैं, बिल्कुल ऐसे ही! ...यह इतनी डुप्लीकेट कॉपियाँ आखिर क्यों हैं! जब खुद असल ही इतना जलील है। शायद सैकड़ों जगह इसी तरह बारिश हो रही होगी, इसी तरह हवा फुफकार रही होगी... डॉक्टर तुम इस पर भी निराश नहीं होते... इतने पर भी?"

"नहीं-ई, मैं मायूस क्यों हूँगा?" - डॉक्टर ने जवाब दिया जो विलास को सँभालने की 'मेहनत' से हाँफ-सा गया था।

'हूफ ! तुम्हें किसी बात पर गुस्सा नहीं आता? तुम मरे हुए हो न - तुम तो मुर्दा हो।'

"मैं तो खुद ही कहता हूँ।"

"तुम यह कहते ही तो हो, महसूस तो नहीं करते। क्या तुम महसूस करते हो कि तुम जिन्दा होते हुए भी एक लाश की तरह धीरे-धीरे गल रहे हो, बिथर रहे हो? We are all

decaying with little patience - little patience... हमें तो कब का मरघट पहुँच जाना चाहिए था।

“वाकई कब का पहुँच जाना चाहिए था।” डॉक्टर ने और अनमने कहा।

“समझ में नहीं आता तुम किस तरह जिन्दा हो, यह तो मौत है, डॉक्टर मौत!”

“मौत?”

विलास ने कुछ ही कदम चलने के बाद अपने-आपको झटककर छुड़ा लिया और करीब-करीब गिर ही पड़ा था। सँभलकर वह अपनी बहस जारी रखने के लिए एक सीली दीवार से सटकर खड़ा हो गया।

“मुझे नहीं मालूम, नहीं मालूम - जब तक जिन्दगी से कोई Compelling Contract न हो, कोई कैसे जिन्दा रह सकता है।”

“नहीं रह सकता... लेकिन रहता ही है,” - डॉक्टर अब वाकई ऊब गया था।

“जिन्दा रहता है? हम लोग जिन्दा कहाँ रहते हैं। हम लाशों की तरह सड़ते-गलते रहते हैं। हमारा खून एक क्रूर कांसप्रेसी से पानी होता रहता है, तुम इसे जिन्दगी कहते हो। तुमसे आब-हवा गन्दी होती है। तुम इसे जिन्दगी कहते हो, जिन्दा चीजें तुमसे छूकर झुलस जाती हैं। तुम इसे जिन्दगी कहते हो डॉक्टर!” उसने अपने स्वाभाविक चिड़चिड़ेपन से डॉक्टर का हाथ पकड़ते हुए कहा - 'इसे कौन जिन्दगी कहेगा? ...डॉक्टर मेरे पास एक छदाम नहीं है, एक सिगरेट नहीं... एक किताब नहीं जिसे मैं बेच सकूँ, इसलिए मैंने शराब पी ली... और इसके बाद। डॉक्टर, क्या मैं जानता नहीं कि इसके बाद अथाह प्रलय है।”

“चलो, क्या बेवकूफी है।” डॉक्टर ने कुछ डाँटकर और कुछ हौसला बँधाते हुए कहा। अँधेरे में वह फिर रेंगते हुए चल दिए। तो भी शीत हवा की लपटें इधर-उधर लपलपा जाती थीं। गीली छतों और काले दरख्तों के ऊपर बादल धूल के बगूलों की तरह उठ रहे थे... ऊपर... ऊपर। विलास बार-बार कीचड़ में फिसल जाता था। मौड़ पर तो वह गिर ही पड़ा था, अगर डॉक्टर ने उसे इतनी कठिनाई से सँभाल न लिया होता। बाएँ बाजू पर विलास के पूरे बोझे को रोके हुए डॉक्टर वाकई थक गया था - इतना कि एक सेकेंड में उसे यह सब अयथार्थ ख्वाब-सा मालूम होने लगा।

वह जानता था विलास का हाथ जो उसके हाथ में पड़ा हुआ है, काफी ऊँचा उठ गया है और वह करीब-करीब पीछे घिसट रहा है, पर वह बहुत थक गया था और उस मकान के साथ उसके मन में एक अजीब कुरूपता आ गयी थी। अपने हाथ को जरा... आराम देने में अजाने उसने विलास का हाथ और ऊँचा कर लिया और विलास ठोकर खाकर एकबारगी गिरा-गिरा हो गया। “डॉक्टर”, जैसे विलास का दिमाग ठोकर खाकर एकबारगी बिचक गया हो, “आओ,” हम यह दुनिया त्याग दें, बुद्ध की तरह हम इसे त्याग दें... हुम्फ - आओ, हम इसकी किसी झूठे देवता के सामने कर्बानी दे दें,” और विलास की जबान लड़खड़ाने लगी थी... ”लेकिन मैं इस दुनिया को प्यार जो करता हूँ! डॉक्टर तुम जानते हो मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ, लेकिन तुम तो मुर्दा हो...” डॉक्टर ने एकबारगी चमककर कहा, ‘शट’प,’ और फिर जैसे धीरे-धीरे बच्चों की तरह सुबकने लगा।

विलास ने अपना हाथ छुड़ा लिया, “मैं इसे प्यार करता हूँ। यह दुनिया विलास को नहीं चाहती, विलास ने अपनी जिन्दगी बरबाद कर दी, दुनिया की दुकानदारी में उसका साझा नहीं रहा; पर विलास इसी दुनिया के अनगिनत प्रोलीटे-प्रोलीतरीयत को प्यार करता है; क्योंकि उसे जीना है, जिन्दा रहना है।” उसने डॉक्टर का, जो अनजाने उससे आ भिड़ा था, फिर हाथ पकड़ लिया। हाथ को संजीदगी से दबाते उसने डॉक्टर के मुँह के पास मुँह ले जाकर फुसलाने के स्वर में कहा - ”डॉक्टर, तुम समझते हो हमें जीना है, हमें जरूर जीना है, रात का जशन खत्म हो गया, सुबह को कागज की कन्दीलों की तरह हम लोग बुझे हुए फर्श पर पड़े हैं। पर देखना हम लोग फिर जल उठेंगे, डॉक्टर! डॉक्टर अब भी सुबक रहा था, वह बेहद ऊबा था। विलास हारकर चुपचाप चल दिया। दूर पर एक गीली छत पर सुबह की रमक ने एक बेशकल बादल बिथरा दिया था। सामने म्यूनिसिपैलिटी की लाल धुँदल लालटेन जल रही थी। आँख की तरह, चिपकी, सूजी हुई आँख जिसमें सामने की रोशनी से खून का एक बूँद डबडबा उठा है। विलास उसे देखकर चिल्ला ही उठा - ”देखो, वह नई दुनिया की रोशनी है, उस दुनिया की जिसके लिए हम जिँगे,” और वह वाकई खड़ा होकर, एक पैर मोड़कर उसे हाथ जोड़ रहा था वैसे ही जैसा उसने अपनी हिस्टरी की किताबों में सूर्यपूजकों की शकलें देखी थीं।

पर डॉक्टर अब भी सुबक रहा था, बच्चों की तरह, बेहद ऊबे हुए बच्चे की तरह।

(हंस (मासिक), बनारस, वर्ष : 9, अंक 10-11 जुलाई-अगस्त, 1939)

